॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ
भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते
एकादशस्कन्धः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीबादरायणिरुवाच॥
कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽ-
वतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

दोहा—ब्रह्म सच्चिदानंदघन, व्यापक हरि सब ठौर ॥
धरिये ताका ध्यान जो, मायाको शिर मौर ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ पहिले दशमस्कंधमें भक्तनके उद्धारिवेको भूभार हरणको प्रगट भये श्रीकृष्णचंद्रकी लीला कही, अब एकादशस्कंधमें भक्तनको उपदेश और पूजामार्ग भक्तिमार्गको फल निर्णय करि कहैंगे, और सब भक्तनको अपने स्थानको प्राप्त करैंगे, ऐसी भांति या एकादशस्कंधमें मुक्तिलीला कहैं जे तहां पहिले कुरुक्षेत्रमें वसुदेव नारदसों कर्मयोग पूछत भये, तब नारद कर्मयोग सब कहत भये, तातें चित्त शुद्ध भयो, जब वसुदेवजीको ज्ञान उत्पन्न भयो अर्थात् श्रीकृष्ण राम ये दोऊ साक्षात् ईश्वर हैं सो फिर वह ज्ञान रह्यो नहीं, तातें फेरि ब्रह्मज्ञान नारदसौं पूछेंगे तब नारद पांच अध्याय

दोहा—मंगलमूरति सुखकरन, दुःखहरन यदुवीर ॥ कृपा करहु जन जान निज, सुंदर श्यामशरीर ॥ १ ॥ एकादशस्कंध यह, ज्ञानकाण्डको सार ॥ शुद्ध कियो कल्याणहित, कछु निजमति अनुसार ॥ २ ॥ कहत प्रथमअध्यायमें, यादवकुलको शाप ॥ मुसल भयो जिमि साबके, प्रजाहि भयो परिताप ॥ ३ ॥

ये कोपिता सुबहुपाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान्॥ कृत्वानिमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभाऱराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

करि वर्णन करैंगे, तहां पहिले अध्यायमें वैराग्य उपजायवेके कारण यदुकुलको ब्रह्मशापके मिष करिकै विषयसुखको अनित्य कहैं हैं पीछे चारि अध्यायन करि राजा जनकको और नव योगीश्वरनको संवाद कहैंगे, तामें परमतत्व निरूपण करैंगे, छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण उद्धवको संगम कहैंगे, पीछे तेईस अध्यायन करि उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्व निरूपण करैंगे, पीछे द्वै अध्यायकरि यादवनको संहार कहैंगे, या भांति इकतीस अध्याय करि एकादशस्कंध कहैंगे, तहां पहिले पूर्वस्कंधकी कथा सुधि करिकै शुकदेवजी आरंभ करैं हैं, दैत्यनको वध करि श्रीकृष्ण बलदेवजी मिलि करिकै यादव सहित कौरव पांडवनमें शीघ्र कलह उत्पन्न करि पृथ्वीको भार उतारत भये ॥ १ ॥ जे पांडुके पुत्र शत्रुनसो बहुत कोपित कराये गये, कपटयुक्त जूआ खेल जिनको राज्य लियो अवज्ञा करि द्रौपदीके केश ग्रहण किये, तिनहीको निमित्त करि दोउ पक्षमें मिले राजानकौ मारिकैं पृथिवीको भार उतारते भये ॥ २ ॥ अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण फिर विचारने लगे कि यद्यपि मैंने भूमिको भाररूप राजसेना अपनें बाहुसौ पालित यादवनसौ नाश कराई तोहू भूमिको भार न गयो, क्यों कि जो अभी यदुकुल बडो अनंत बाकी है, यह बडो भार है यासो या गये भारको नहीं गयेकी तरह मानौ हौ ॥ ३ ॥

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥४॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्ने स्वकुलं विभुः ॥५॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

जाकें मैं आश्रय हों ताकों पराजय तो औरतें न होइ और ये तो सब यादव वैभव करि उद्धत भये हैं तातें इनमें आपुसमें कलह उपजाइके जैसें बांसनके वनमें रगडसों उपजी आगि बांसनको जलाय के शांत होय है ऐसेंही यादवनमें क्लेश उत्पन्न कर इनकौ संहार करके शांतिको प्राप्त ह्वेके अपने धामको पधारूंगो ॥४॥ हे राजन् ! या प्रकार बुद्धिसों निश्चय करि सत्यसंकल्प ईश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्मशापके मिषसों अपनो कुलसंहार करत भये ॥५॥ जाके समान लोकमें कोई सुंदर नहीं जाके निमित्तसों लोक शोभाको प्राप्त होय हैं ऐसे अपने शरीरसों भक्तजननके नेत्रनको अपनेमें आसक्त कर तथा अपने मनोहर वचनसों विन वचननके स्मरण करनवारे लोकनको चित्त आकर्षण कर रजसो चिह्नित अपने पदकमलनके अवलोकन करनवारे प्राणिनकी अन्य स्थाननमें जायवेकी चेष्टाको रोककर समयमें उत्पन्न होनवारे प्राणी याही अवलम्बसों संसारके पार ह्वैजायगे ऐसो विचार कर पुण्यात्मानमें धारण करी जाय ऐसी अपनी कीर्तिको पृथ्वीमें फैलायके श्रीकृष्ण अपने धामको पधारे ॥ ६-७ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसे-
विनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेत-
साम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजस-
त्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माऽऽचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः॥आस्थाय धाम
रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृ-
त्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि
गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना
निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो
विसृष्टाः ॥ ११ ॥

परीक्षित् बोले हे शुकदेवजी हे प्रभो ! जे यादव अतिब्रह्मण्य अतिदांत सत्यवक्ता नित्य वृद्धनकी सेवा करनवारे सदा कृष्णमें मन लगाये रहैं हैं विनको ब्राह्मणनको शाप कैसे भयो ॥ ८ ॥ जिनको मन श्रीकृष्णमें लगो हो विनकों ब्राह्मणनको कोप होय तौहू शाप लगानो नहीं चाहिये तौ यह यादवनकों शाप कैसे लगो हे शुकदेवजी ! यह शाप जा कारणसौं भयो और सम्मतिसैं रहनेवाले यादवनमें भेद कैसै भयो सो हमसों कहो ॥ ९ ॥ शुकदेवजी बोले पहिलें भक्तनके सुख देवेके अर्थ भगवान्नै सकल सुंदरतानिधान स्वरूप धर अत्यंत मंगलकर्म भूमिमें किये, यद्यपि आप पूर्णकाम हैं तथापि फेरि द्वारकामें धाम करि क्रीडा करते सब भक्तनको सुख दियो, पहिले जीवनके उद्धारको उदार कीर्ति विस्तारी, आगे अपनें कुल संहारको इच्छा करतभये कारण कि इतनोही कृत्य बाकी रह्यो है ॥ १० ॥ भगवान्श्रीकृष्णचन्द्र जो कार्य करतेहैं वे कर्म केवल

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुराङ्गिराः ॥
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥
क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ॥ उप-
संगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेष-
यित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति
वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती
साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा
किंस्वित्संजनयिष्यति ॥ १५ ॥

कीर्तन करवेसोही पुण्यके बढानेवारे सुखरूप और कीर्तन करवेवारनके पाप दूर करनवारे हे ऐसे कर्म करवेके निमित्त बुलाये ब्राह्मणनको इन सब करमनसों निश्चिन्त हो श्रीकृष्णने पिंडारक नाम स्थानपर जायवेको कही तब मुनि तहां जातभये भगवान् श्रीकृष्ण कालरूप हैवेसो वसुदेवजीके घरमें रहकर अपने कुलको निर्मूल करनौ चाहतेहे याही कारण ऋषिनको पिंडारक स्थानमें भेजौ सो वे सब पिंडारकनाम तीर्थमें वे ऋषि चलेगये ॥ ११ ॥ तिन मुनिनके नाम कहें हैं विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, नारद आदि लेकरि औरहू मुनि हैं ॥ १२ ॥ इन ऋषीश्वरनके पास सब यदुकुमार खेलत २ जाइकरिकैं पाय परि परि नमस्कार करि पूछत भये, परन्तु विनके मनमें कपटभरो हो ॥ १३ ॥ अब उन सब बालकनको प्रश्न हैं ते सब बालक जांबवतीके पुत्र सांबको स्त्रीवेष बनाई पूछत भये, अहो मुनीश्वर ! तुम सर्वज्ञ हो यह गर्भवती है याकें पुत्रकामना है, और प्रसव होनहार है, तुमसों साक्षात् पूछत लज्जा करे है, याकें कहा होइगो पुत्र या कन्या यों पूछतभये॥ १४ ॥ १५ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयि-
ष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा
तेऽतिसन्त्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ साम्बस्य
ददृशुस्तस्मिन्मुसलं कुलनाशनम् ॥ १७ ॥ किं कृतं
मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ॥ इति विह्व-
लिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय
सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः
सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा
च मुसलं नृप ॥ विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वा-
रकौकसः ॥ २० ॥

याभांति छलसो यादवनके बालक पूछत भये, तिनपै कुपित होइ मुनि बोले हे मूर्खों ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूशलकों जनेंगी ॥ १६ ॥ यह सुनि अति भयभीत भये बालक उतावलसों सांबके उदरको खोलकरि लोहेको मूशल देख त्रासितहोत भये ॥ १७ ॥ परस्पर बोले मंदभागी हमनें यह कहा कीनो, हमसों मनुष्य कहा कहेंगे, या भांति विह्वल भये मूशलको ले आवतभये ॥ १८ ॥ उनके मुखकी शोभा अतिमलीन भई, सब बालक वा मूशलकों सभाबीच लायके सब यादवनकें निकट राजा उग्रसेनसों कहतभये, परन्तु श्रीकृष्णसूं नहीं कहतभये ॥ १९ ॥ सफल नाम खाली न जाय ऐसे शापको सुनिकैं और मुशल देखिकैं द्वारकाके वासी अचरज मानतभये और भयभीत भये ॥ २० ॥

---

१ दोहा—अहो भाग्यकी बात जब, होत समै विपरीत ।
ताकी यह पहचान है, करत सो उलटी रीत ॥ १ ॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः॥ समुद्रस-
लिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चि-
न्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः॥उह्यमानानि
वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥ मत्स्यो गृहीतो
मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स
शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ
ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं काल-
रूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते म० एका-
दशस्कन्धे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णके विना पूछे वह यादवनको राजा उग्रसेन ता मूशलको चूर्ण कराइ समुद्रके जलमें वहावत भये रेतवेते शेष जो लोहो रह्योहो सोऊ समुद्रमें डारत भये ॥ २१ ॥ कोउ मत्स्य वा लोहको निगलि गयो, और चूर्ण सब तरंगनिसौं समुद्रनें तीरपै डारि दीनो, तेई सब पटेरे उपजत भए॥ २२॥ वह मत्स्य समुद्रमें और मत्स्यनके संग धीमरने जालमें पकरचो, वाके उदरतें लोह निकस्यो, ताकी वधिकने तीरकी भाल करी ॥ २३ ॥ भगवान् ईश्वर सकल अर्थके ज्ञाता हैं, तौहू निवारिणकी इच्छा नहीं करके विप्रशापहीको मुरुय करतभये कारण कि या समें आपु कालरूप हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां एकादशस्कन्धे
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ॥ मुच्येम
ह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥
नारद उवाच ॥ सम्यगेतद्व्यवसितं भवता भरतर्षभ ॥
यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥
श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः॥ सद्यः
पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया
परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भग-
वानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाह-
रन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं
विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

आराधन नहीं कियो यह बात सूतिकागृहमें श्रीकृष्णने कही सो मोको स्मरण है ॥८॥ हे नारद ! ताते अनेकदुःखसंयुक्त सब ओरतें भयवारे संसारसों जैसे श्रम विनाभैंछूटों तैसी हमको तुम शिक्षा देउ ॥ ९ ॥ हे राजन् ! बुद्धिवंत वसुदेवजीने जब ऐसे कह्यो, तब हरिके गुणनकी सुधि दिवाएते प्रसन्नभये देवऋषि नारद वसुदेवजीसों कहत भए ॥१०॥ हे यादवनमें श्रेष्ठ वसुदेव ! तुमने यह भलो निश्चय उत्तम प्रश्न कीनो, जातें तुम संपूर्णके चित्त शुद्ध करनवारे वैष्णवधर्मनको पूछौहो ॥११॥ये धर्म सुननो स्मरण करनो श्रद्धा करि आदरतें ध्यान करवेसो सम्मति देवेसों सम्पूर्ण विश्वके पातकी जननकोहू शीघ्र पवित्र करदेय है कारण कि यह भगवत्सम्बन्धी धर्म है ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! तुमने परमकल्याणरूप पुण्यश्रवणकीर्तन देव नारायणको स्मरण करायकें मोकों पवित्र कियो जो तिनकी सुध तुमने दिवाई ॥१३ ॥ अब यहां

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ॥ त-
स्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥
तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुत-
शतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो
ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना
भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां
निर्गतस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै
जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥ तेषां नव नवद्वीपपत-
योऽस्य समन्ततः ॥ कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीति-
र्द्विजातयः ॥ १९ ॥

मैं तुमसों प्राचीन कथा कहूंहूं; उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरनको संवाद है ॥ १४ ॥ स्वायंभुवमनुको प्रियव्रत नाम पुत्र भयो, ताको पुत्र आग्नीध्र भयो, ताको नाभि भयो, ताकें ऋषभदेव भये ॥ १५ ॥ तिनके मध्य नवयोगीश्वरनको चरित्र कह्यो चाहैहैं तातें औरनको चरित्र न्यारो कहैहैं, विन ऋषभदेवको वासुदेवको अंश कहैहैं विननें मोक्षधर्म कहिवेको अवतार लियो तिनकें १०० पुत्र भये ते सिगरे वेदपारंगत भये ॥ १६ ॥ तिनमें नारायणपरायण भरतजी श्रेष्ठ भये, यह अजनाभखंडही जिनके नामसें भरतखंड प्रसिद्ध भयो ॥ १७ ॥ सो राजा भरत पृथिवीको भोग करि याको छोडिकरिकैं तपस्याको निकसे, हरिकी उपासना करते तीनि जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्तभये जिनको चरित्रपहले पंचमस्कंधमें कहिआये हैं ॥ १८ ॥ या भरतखंडके चारों ओर विनके नौ पुत्र नौऊ द्वीपके पति भये, इक्यासी पुत्र कर्म-

नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा
वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥ कविर्हरि-
रन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रु-
मिलश्चमसः करभाजनः॥२१॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं
सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो
व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसि-
द्धसाध्यगन्धर्वयक्षसुरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ता-
श्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुव-
नानि कामम्॥२३॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्य-
दृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभेमहात्मनः
॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ॥
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥

मार्गके प्रवर्त्तक ब्राह्मण भये ॥ १९ ॥ और जे नव पुत्र महाभागवत मुनि भये वे परमार्थके उपदेशकर्त्ता आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर, दिगंबरवेष आत्मविद्यामें पारंगत भये ॥ २० ॥ तिनके नाम कहें हैं कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, करभाजन ॥ २१ ॥ वे सब या विश्वकों भगवद्रूप करिकैं देखतभये, स्थूल सूक्ष्मको आत्मातें भिन्न देखतभये, वे सब आत्मरूपहीकों देखते संपूर्ण पृथिवीमें फिरत भये ॥ २२ ॥ अप्रतिहतगतिसौं आसक्तिरहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किंनर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण, गोलोकनमें अपनी इच्छासौं विचरते हैं ॥ २३ ॥ वे सब स्वेच्छासो एक दिन अजनाभखंडमें ऋषिन करि विस्तृत उदारचित्त राजा जनकके यज्ञमें आवत भये ॥ २४ ॥ सूर्य्य समान तेजस्वी परमभागवतनकों

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः संपूजयाञ्चक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९॥ अत आत्यन्तिकं क्षेम पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥ यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥

देखि यजमान अग्नि ब्राह्मण सब उठि ठाढे भये ॥ २५ ॥ तब राजा जनक विनकों नारायणपरायण जानि प्रसन्न भये आसन दे यथायोग्य पूजा करत भये ॥ २६ ॥ अपनी कांतिकरि शोभासंयुक्त सनकादिकनके समान विन नौऊनको देखि प्रसन्न बहुत भये विनयकरि नम्र ह्वैकें पूछत भये॥ २७॥पहिले उनकी स्तुति करी कि तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवानके पारषद हो, जो तुम विष्णुभक्त हो लोकनकों पवित्र करवेकों सब ठौर विचरो हो ॥ २८॥ मैंने दुर्लभवस्तु पाई हैं,ताते मेरो बडो भाग्य है,यह कहैहैं देहधारीनकों जो क्षणभंगुर हू शरीर है तोहू मनुष्य देह दुर्लभ है,ताहूमें भगवान्के प्रिय भक्तनको दर्शन अति दुर्लभ हैं ॥ २९ ॥ हे निष्पापो ! याते मैं तुमसों अत्यंत कल्याण पूछूं हूं, या संसारमें अर्द्ध क्षणहूं सत्संग मनुष्यनको बडी निधि है ॥ ३० ॥ ताते हम सुनिवेको अधिकारी जानों तौ मोसों वै-

नारद उवाच॥एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेवमहत्तमाः॥
प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥
कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बु-
जोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावा-
द्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः॥ ३३ ॥ ये वै भगवता
प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अञ्जः पुंसामविदुषां
विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय नरो
राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न
स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥

ष्णवधर्म कही जिन धर्मनकरि प्रसन्न भये भगवान् भक्तनको अपनो आत्माहूको देय है॥ ३१ ॥ नारदजी बोले हे वसुदेव! ऐसे राजा जनकके पूछें वे "अति बडे महंत" ऋत्विज और सभासद सहित राजा जनककी स्तुति प्रीतिपूर्वक करत भये॥ ३२ ॥ जनकने नौ प्रश्न कीनें प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरो परमेश्वरकी भक्ति, तीसरें माया, चौथो मायाको तरणो, पांचवें ब्रह्म, छठयो कर्म, सातवों अवतार चरित्र, आठ्यों भक्तिप्राप्ति, नौंयौ युग, इन एक एक प्रश्नको उत्तर नौहू मुनीश्वर देत भये, तहां प्रथमही अति कल्याणरूप धर्म कवि योगीश्वर बोले कि हे राजन्! मैं तौ ऐसो मानो हौ हरिके चरणारविंदनकी उपासनाही सब प्रकारके भय दूर करे है जाके करवेसों देहादि भिन्न पदार्थनके गर्वसों सदा उद्वेगकों प्राप्त ह्वैके यह पुरुष संसारके भयसों छुटजाय है ॥ ३३ ॥ वैष्णव धर्मके लक्षण कहे हैं प्रथम मनु आदि ऋषिनके मुखसों वर्ण आश्रम धर्म सब कहे हैं, पीछें अति रहस्यतें अपने मुखसें भगवान्ने अज्ञानियनकों सुखपूर्वक आत्मज्ञान पाईवेके जो उपाय कहे हैं वे सब वैष्णवधर्म हैं ॥३४ ॥ विन धर्मनकों

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृत-
स्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणा-
येति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः
स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्माययाऽ-
तो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥

आश्रय कर मनुष्य कबहूं विघ्नसौं नहीं पीडित होयहै हे राजन्! नेत्र मुंदिके दौरे तौहू नहीं गिरै ता कदाचित् वर्ण आश्रम धर्म न बन पडे तौहू प्रतिवादी नहीं होय है और न फलतें भ्रष्ट होय है ॥ ३५ ॥ जे विधिसौं बताये शास्त्रोक्त किये कर्मही नारायणके अर्पण करै यह नियम नहीं है किन्तु शरीर वाणी मन बुद्धि अहंकार और अध्याससौं माने भए ब्राह्मणत्वादि सौंहू जो कछु कर्म करवेमें आवै वे सब परमेश्वरके अर्पण करवेसौं शारीरिकी क्रिया सब नारायणसम्बन्धी धर्मरूप हो जाय हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसों विमुखको विनकी मायासो भगवत्स्व-रूपको ज्ञान नहीं होयहै तातें अहंदेह अभिमान होइहै तब दूसरेके अभिनिवेशतें भय होय है जाकारण कि जिनकी मायासो भय होयहै यातें गुरुको देवता और इष्ट माननेवारे बुद्धिवंत निश्चयकरि भक्तिसे ईश्वरहीकों भजें, तहां पूर्वपक्षमें कहैं हैं कि चित्त विषयनसो चंचल होई विनको निश्चल भक्ति कैसे होई, और भक्ति न होइ तो भय कैसें जाइ ताको उत्तर है कि विषय कछु वस्तु नहीं हैं केवल मनको विलास मात्र है, यातें मनकों निग्रह करिकैं जो भजन करैतो अभय

१ कवित्त—काम जब जागै तब गिनत न कोऊ शंक जाने सब जोई करि देखे तन माधी है। क्रोध जब जागै तब नेकन संभारि सकै ऐसी विधि मूलकी अविद्या जिन साधी है ॥ लोभ जब जागै तब तृप्ति न क्योंहू होय सुंदर कहत इन ऐसेही में खाधी है। मोह मतवारो निशदिनही फिरत रहत मनसों न कोऊ हम देख्यो अपराधी है ॥ १ ॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोध्यातुर्धिया स्वप्न-
मनोरथौ यथा ॥ तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो
निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्सुभद्राणि
रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके॥गीतानि
नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः
॥ ३९ ॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो
द्रुतचित्त उच्चैः॥हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मा-
दवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं
महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्॥ सरित्स-
मुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥४१॥

होइ, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूपही है दूसरो कोऊ नहीं हैं ॥ ३७॥ तथापि अविद्यासौ द्वैत भासै है जैसे ध्यानकर्त्ता पुरुषकों मनसो स्वप्न और मनोरथ दीखे है तातें संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनकों बुद्धिवंत रोके, तब निश्चल भक्ति करिकें भजनतें अभय होइ ॥ ३८ ॥ जे जगदीशके शुभ कर्म जन्म हैं और जे जन्म कर्म करिकैं भये नाम लोकमें प्रसिद्ध हैं तिनकों लज्जा छोडिकें निस्पृही ह्वैकें गावत फिरे ॥ ३९ ॥ ऐसें भजन करवेसौ प्रेमलक्षणा भक्तियोगकों प्राप्त ह्वैवेसौ वाकी संसारतें न्यारी गति कहें हैं,ऐसो जाको आचरण है और हरिके नाम कीर्त्तनसो अनुराग बढवेसो और चित्त अतिकोमल ह्वैवेसौ वह भक्त भगवानको जीतलेय हैं तब विनकी यह दशा ह्वैजायहै कभी भगवानको अपने वशमें जानकै हंसते इतनो काल व्यर्थ गयो यह जानि कर रोते कबहू अति उत्कंठातें पुकारते कबहू आनंद मानिकै ऊंचे स्वरसों गाते कभी नाचते या प्रकार अलौकिक उन्मत्तनकीसी चेष्टा करन लगे हैं ॥ ४० ॥ आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ज्योति